निर्देश ही नहीं देते, वरन् जानने का साधन भी बताते हैं। श्रीभगवान् वेद के परम लक्ष्य हैं—वेदान्तसूत्र में इसका यह प्रमाण है: **तत्तु समन्वयात्**। वैदिक शास्त्रों के ज्ञान से कृत्यकृत्यता होती है और विविध साधनों के द्वारा श्रीभगवान् से अपने सम्बन्ध को जाना जा सकता है। इस प्रकार उन्नति करके अन्त में उन्हें प्राप्त हुआ जा सकता है। यही जीवन का परम लक्ष्य है। अस्तु, इस श्लोक में वेदों के प्रयोजन, वेदों के ज्ञान और वेदों के लक्ष्य का स्पष्ट निरूपण है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।१६।।

द्वौ=दो; **इमौ**=ये; **पुरुषौ**=चेतन; **लोके**=संसार में; **क्षरः**=स्वरूप से गिरने वाला; **च**=तथा; **अक्षरः**=स्वरूप से न गिरने वाला; **एव**=निःसन्देह; **च**=तथा; **क्षरः**=क्षर पुरुष; **सर्वाणि**=सब; **भूतानि**=जीव हैं; **कूटस्थः**=एकावस्था; **अक्षरः**=अक्षर; **उच्यते**=कहा जाता है।

अनुवाद

क्षर और अक्षर, ये दो प्रकार के जीव हैं। प्राकृत-जगत् में सब प्राणी क्षर हैं और वैकुण्ठ-जगत् में प्राणीमात्र अक्षर कहलाता है।।१६।।

तात्पर्य

पूर्व में कहा जा चुका है कि श्रीभगवान् ने व्यास-अवतार में 'वेदान्तसूत्र' का संकलन किया। यहाँ श्रीभगवान् वेदान्तसूत्र का सारांशनिरूपण करते हैं। वे कहते हैं कि जीव असंख्य हैं और उनकी क्षर और अक्षर—दो कोटियाँ हैं। जीव श्रीभगवान् के सनातन भिन्न-अंश हैं। जब वे प्राकृत-जगत् के ससर्ग में रहते हैं, तो 'जीवभूत' कहे जाते हैं। यहाँ पर **सर्वाणि भूतानि** का तात्पर्य है कि वे स्वरूप से पतनमुखी हैं। इसके विपरीत, जो मुक्त जीव श्रीभगवान् से एकावस्था में स्थित हैं, उनका कभी स्वरूप से पतन नहीं होता, अर्थात् वे अक्षर हैं। एकावस्था का यह अर्थ नहीं कि उनका अपना कोई स्वरूप ही नहीं रहता। इसका अर्थ है कि वे परस्पर सम्बन्धहीन नहीं हैं। वे सब सृष्टि के प्रयोजन के लिए एकमत हैं। निःसन्देह शाश्वत् वैकुण्ठ-जगत् की सृष्टि का प्रश्न नहीं उठता। यहाँ सृष्टि विषयक विचार इसलिए किया गया है, क्योंकि श्रीभगवान् ने 'वेदान्तसूत्र' में कहा है कि वे सब उद्गमों के स्रोत हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण के अनुसार जीवों की दो कोटियाँ हैं। यह वेदों से भी प्रमाणित है, अतः निःसन्देह सत्य है। जो जीव मन और पाँच इन्द्रियों के साथ इस संसार में संघर्ष कर रहे हैं, वे प्राकृत देह में स्थित हैं। बद्धावस्था में जीव की देह में निरन्तर विकार हुआ करता है। ऐसा अचित् (जड़ प्रकृति) के संसर्ग के कारण हाता है; अचित् जड़-तत्त्व विकारी है, इसलिए उसके संसर्ग में जीवात्मा भी विकारी प्रतीत होता है। परन्तु वैकुण्ठ-जगत् में मिलने वाली देह अचित् जड़ से नहीं बनी होती; अतः वहाँ क्षरण अथवा विकार नहीं होता। प्राकृत-जगत् में जीव को छः विकारों की प्राप्ति होती